International Journal of Applied Research 2016; 2(11): 269-274

ISSN Print: 2394-7500
ISSN Online: 2394-5869
Impact Factor: 5.2
IJAR 2016; 2(11): 269-274
www.allresearchjournal.com
Received: 18-09-2016
Accepted: 20-10-2016

सुरेन्द्र कुमार गुप्ता
हिन्दी विभाग, राजकीय महाविद्यालय, हिन्डौन सिटी राजस्थान, भारत

Correspondence
सुरेन्द्र कुमार गुप्ता
हिन्दी विभाग, राजकीय महाविद्यालय, हिन्डौन सिटी राजस्थान, भारत

मुंशी प्रेमचन्द्र का हिन्दी साहित्य में योगदानः एक समीक्षा

सुरेन्द्र कुमार गुप्ता

DOI: https://doi.org/10.22271/allresearch.2016.v2.i11d.10863

सारांश
हिन्दी उपन्यास की परम्परा इतनी गहरी और विभिन्न रंगों से भरपूर है की इस छोटे से लेख में इस विषय को न्याय देना असंभव ही है। प्रेमचन्द ने हिन्दी साहित्य को निश्चित दिशा दी है। प्रेमचन्द आज भी उतने ही प्रासंगिक है जिनते अपने दौर में रहे हैं, बल्कि किसान जीवन की उनकी पकड और समझ को देखते हुए उनकी प्रासंगिकता और अधिक बढ़ जाती है। किसान जीवन के यथार्थवादी चित्रण में प्रेमचन्द हिन्दी साहित्य में अनूठे और लाजवाब रचनाकार रहे हैं। प्रेमचन्द का कथा साहित्य जितना समकालीन परिस्थितियों पर खरा उतरता है, उतना ही बहुत हद तक आज भी दिखाई देता है। उनकी रचनाओं में गरीब श्रमिक, किसान और स्त्री जीवन का सशक्त चित्रण उनकी दर्जनों कहानियों और उपन्यासों में हुआ है, 'सद्गति', 'कफन', 'पूस की रात' और 'गोदान' में मिलता है। 'रंगभूमि', 'प्रेमाश्रम' और 'गोदान' के किसान आज भी गाँवों में देखे जा सकते हैं साहित्य के क्षेत्र में प्रेमचन्द का योगदान अतुलनीय है। उन्होंने कहानी और उपन्यास के माध्यम से लोगों को साहित्य से जोड़ने का काम किया, उनके द्वारा लिखे गए उपन्यास और कहानियाँ आज भी प्रासंगिक हैं।

कूटशब्दः साहित्यिक जीवन, साहित्य में योगदान, सामाजिक सुधार, स्वाभाविकता

प्रस्तावना
मुंशी प्रेमचन्द का जन्म 31 जुलाई 1880 को उत्तरप्रदेश के वाराणसी के लमही ग्राम में हुआ था। मुंशी प्रेमचन्द का वास्तविक नाम धनपत राय था। उनके पिता अजायबराय डाकखाने में एक क्लर्क थे। बचपन में ही इनकी माता का स्वर्गवास हो गया था तथा उसके बाद सौतेली माँ के नियंत्रण में रहने के कारण उनका बचपन बहुत ही कष्ट में बीता। धनपत को बचपन से ही कहानी सुनने का बड़ा शौक था। इसी शौक ने इन्हें मकान कहानीकार व उपन्यासकार बना दिया। प्रेमचन्द की शिक्षा का प्रारंभ उर्दू से हुआ। पढ़ाई में तेज होने के कारण शीघ्र ही मैट्रिक की परीक्षा पास कर ली। कठोर परिश्रम के चलते इंटर और बीए भी जल्दी ही पास कर लिया। स्नातक होने के बाद अल्पायु में ही प्रेमचन्द का विवाह कर दिया गया। लेकिन मनोनुकूल पत्नी न होने के कारण बाल विधवा शिवरानी देवी से विवाह कर लिया।
प्रेमचन्द के उपनाम से लिखने वाले धनपत राय श्रीवास्तव हिन्दी और उर्दू के महानतम भारतीय लेखकों में से एक है। उन्हें मुंशी प्रेमचन्द व नवाब राय के नाम से भी जाना जाता है। उन्हें उपन्यास सम्राट के नाम से नवाजा गया था। इस नाम से उन्हें सर्वप्रथम बंगाल के विख्यात उपन्यासकार शरतचन्द्र चट्टोपाध्याय ने संबोधित किया था।
प्रेमचन्द ने हिन्दी कहानी और उपन्यास की एक ऐसी परम्परा का विकास किया जिसने पूरी शती के साहित्य का मार्गदर्शन किया। उनका लेखन हिन्दी साहित्य की एक ऐसी विरासत है जिसके बिना हिन्दी के विकास का अध्ययन अधूरा होगा। वे एक संवेदनशील लेखक, सचेत नागरिक, कुशल वक्ता तथा सुधी संपादक थे। बीसवीं शती के पूर्वार्द्ध में, जब हिन्दी में की तकनीकी सुविधाओं का अभाव था, उनका योगदान अतुलनीय है।

साहित्यिक जीवन एवम साहित्य में योगदान
प्रेमचन्द उनका साहित्यिक नाम था और बहुत वर्षों बाद उन्होंने यह नाम अपनाया था। उनका वास्तविक नाम 'धनपत राय' था। जब उन्होंने सरकारी सेवा करते हुए कहानी लिखना आरम्भ किया, तब उन्होंने नवाब राय नाम अपनाया। बहुत से मित्र उन्हें जीवन–पर्यन्त नवाब के नाम से ही सम्बोधित करते रहे। जब सरकार ने उनका पहला कहानी संग्रह, 'सोजे वतन' जब्त किया, तब उन्हें नवाब राय नाम छोड़ना पड़ा। बाद का उनका अधिकतर साहित्य प्रेमचन्द के नाम से प्रकाशित हुआ।

इसी काल में प्रेमचन्द ने कथा–साहित्य बड़े मनोयोग से पढ़ना शुरू किया। एक तम्बाकू–विक्रेता की दुकान में उन्होंने कहानियों के अक्षर भण्डार, 'तिलिस्मे होशरूबा' का पाठ सुना। इस पौराणिक गाथा के लेख फैजी बताए जाते हैं, जिन्होंने अकबर के मनोरंजन के लिए ये कथाएँ लिखी थी। एक पूरे वर्ष प्रेमचन्द ये कहानियाँ सुनते रहे और इन्हें सुनकर उनकी कल्पना को बड़ी उत्तेजना मिली। कथा साहित्य की अन्य अमूल्य कृतियाँ भी प्रेमचन्द ने पढ़ीं। इनमें 'सरशार' की कृतियाँ और रेनाल्ड की 'लन्दन–रहस्य' भी थी। गोरखपुर में बुद्धिलाल नाम के पुस्तक–विक्रेता से उनकी मित्रता हुई। वे उनकी दुकान की कुंजियाँ स्कूल में बेचते थे और इसके बदले में वे कुछ उपन्यास अल्पकाल के लिए पढ़ने को घर ले जा सकते थे। इस प्रकार उन्होंने दो–तीन वर्षों में सैंकड़ों उपन्यास पढ़े होंगे। इस समय प्रेमचन्द के पिता गोरखपुर में डाकमुंशी की हैसियत से काम कर रहे थे। गोरखपुर में ही प्रेमचन्द ने अपनी सबसे पहली साहित्यिक कृति रची।

प्रेमचन्द के साहित्य पर सर्वत्र शिव का शासन है – सत्य और सुंदर शिव के अनुचर होकर आते हैं। उनकी कला स्वीकृत रूप में जीवन के लिए थी और जीवन का अर्थ भी उनके लिए वर्तमान सामाजिक जीवन था। वे कभी वर्तमान से दूर नहीं गए। प्रेमचन्द ने जीवन का गौरव राग नहीं गाया, न ही भविष्य की हैरत–अंगेज कल्पना की। उन्होंने न तो अतीत के गुण गाए और न ही भविष्य के मोहक सपनों का भ्रमजाल अपने पाठकों के सामने फैलाया। वे ईमानदारी के साथ वर्तमान काल की अपनी वर्तमान अवस्था का विश्लेषण करते रहे। उन्होंने देखा कि बंधन भीतर का है, बाहर का नहीं। एक बार अगर ये किसान, ये गरीब, यह अनुभव कर सकें कि संसार की कोई भी शक्ति उनको दबा नहीं सकती तो वे निश्चय ही अजेय हो जाएंगे। अपने मौजी पात्र (मेहता) से कहलवाते हैं, ''मैं भूत की चिंता नहीं करता, भविष्य की परवाह नहीं करता। भविष्य की चिंता हमें कायर बना देती है। भूत का भार हमारी कमर तोड़ देता है। हममें जीवनी शक्ति इतनी कम है कि भूत और भविष्य में फैला देने से वह क्षीण हो जाती है। हम व्यर्थ का भार अपने ऊपर लाद कर रूढ़ियों और विश्वासों तथा इतिहासों के मलबे के नीचे दबे पड़े हैं। उठने का नाम नहीं लेते।''

सामाजिक सुधार

प्रेमचन्द का साहित्य सामाजिक जागरूकता के प्रति प्रतिबद्व है उनका साहित्य आम आदमी का साहित्य है। सामाजिक सुधार संबंधी भावना का प्रबल प्रवाह उन्हें कभी–कभी एक कल्पित यथार्थवाद की ओर खींच ले जाता है फिर भी कल्पना और वायवीयता से कथासाहित्य को निकालकर उसे समय और समाज के रू–ब–रू खड़ा करके वास्तविक जीवन के सरोकारों से जोड़ा। इनकी कहानियों में जहाँ एक ओर रूढ़ियों, अंधविश्वासों, अंधपरंपराओं पर कड़ा प्रहार किया गया है वहीं दूसरी ओर मानवीय संवेदनाओं को भी उभारा गया है। अपने जीवन काल में वे विभिन्न सुधारवादी और पराधीनता की स्थितिजन्य नव जागरण प्रवृत्तियों से प्रभावित रहे हैं, यथा–आर्यसमाज, गाँधीवाद, वामपंथी विचारधारा आदि। लेकिन समाज की यथार्थगत भूमि पर उसकी सहज प्रवृत्ति में ये प्रवृत्तियाँ जितनी समा सकती है, उतनी ही मिलाते हैं, ठूस कर नहीं भरते। इसीलिए चित्रण में जितनी स्वाभाविकता प्रेमचन्द में देखने को मिलती है, अन्यत्र दुर्लभ है। 'गोदान' में तो यह अपनी पराकाष्ठा पर पहुँच गई है। यदि प्रेमचन्द युग का आरम्भ 'सेवासदन' में है, तो उसका उत्कर्ष 'गोदान' में। आदर्शों और विचारधाराओं को वे अपने पात्रों पर थोपते नहीं हैं, बल्कि अन्तर्मन या अन्तरात्मा की आवाज की तरह स्वाभाविकता रूप से प्रस्फुटित होने देते हैं।

'सेवासदन' और 'कायाकल्प' में जहाँ साम्प्रदायिक समस्या उठाई गई है, वहीं 'सेवासदन', 'रंगभूमि', 'कर्मभूमि' और 'गोदान' में अन्तर्जातीय विवाह की। समाज में नारी की स्थिति और अपने अधिकारों के प्रति उनकी जागरूकता इनके लगभग सभी उपन्यासों में देखने को मिलती है। 'गबन' और 'निर्मला' में मध्यम वर्ग की कुण्ठाओं का बड़ा ही स्वाभाविक और सजीव चित्रण किया गया है। हरिजनों की स्थिति और उनकी समस्याओं को 'कर्मभूमि' में सर्वोत्तम है।

स्वाभाविक

अपनी कहानियों में प्रेमचन्द ने अपनी स्वाभाविक भूमि की विरासत को वैसे ही सुरक्षित रखा जैसे अपने उपन्यासों में। उनके सजग द्रष्टापन की उपस्थिति वहाँ भी है। वे 'कफन' के घीसू और माधव हों 'ईदगाह' का हामिद हो या 'बूढ़ी काकी', उनकी यथार्थ मानसिकता के प्रति प्रेमचन्द जी पूरी तरह सजग हैं। चाहे हामिद ने भले ही अपनी तार्किक प्रतिभा से अपने चिमटे को अन्य बच्चों के खिलौनों से श्रेष्ठ सिद्ध कर दिया हो, लेकिन उन खिलौनों के प्रति उसकी ललक प्रेमचन्द से छुपी नहीं है। घटनाक्रम की स्वाभाविकता का कोई जवाब नहीं।

उपन्यास

प्रेमचन्द जी का पहला उपन्यास 'सेवासदन' 1918 में प्रकाशित हुआ। इसी के साथ नये युग का सूत्रपात होता है। इसे 'प्रेमचन्द युग' या हिन्दी उपन्यास का 'विकास युग' के नाम से जाना जाता है।

यह काल भारतीय स्वतंत्रता संग्राम और समाज सुधार संबंधी आन्दोलनों का काल था। अंग्रेजी शासन और शिक्षा एवं सभ्यता के प्रभाव से हमारे समाज में व्याप्त कुरीतियों, अंधविश्वासों एवं धार्मिक आंडबरों के खिलाफ विद्रोह से एक नवीन चेतना और गौरव की भावना का उदय हो रहा था। महात्मा गाँधी राजनीतिक मंच पर पूरी तरह से उदित हो गए थे। उनके सत्य, अहिंसा, सदाचार, सत्याग्रह, अस्पृश्यता विरोध, स्त्रियों की उन्नति, ग्राम सुधार, अछूतोद्धार, स्वदेशी आदि से संबंधित विचारधारा का लोगों पर काफी प्रभाव पड़ने लगा था। अन्याय–उत्पीड़न के खिलाफ विरोध की नई शक्ति का उदय हो चुका था। उत्पीड़क समाज, सामन्त वर्ग आदि से टक्कर लेने का साहस लोगों में जगा था। रूस की नवजागृति, विज्ञान के आविष्कार, आदि का हमारे जन–जागरण पर व्यापक प्रभाव पड़ा। इसलिए कल्पना, रोमांस और चमत्कार–प्रदर्शन के इन्द्रजाल से मुक्ति लेकर हिन्दी उपन्यासकार यथार्थ के कठोर धरातल पर कदम रखकर समाज के हित में साहित्य की रचना करने लगे।(1)

इस नयी रचना–दृष्टि के संवाहक थे मुंशी प्रेमचन्द। अपने पहले के उपन्यासकारों पर टिप्पणी करते हुए उन्होंने कहा था, ''जिन्हें जगत् गति नहीं व्यापती, वे जासूसी, तिलस्मी चीजें लिखा करते हैं।''

देवकीनन्दन खत्री के लिए उपन्यास एक जीवित शक्ति नहीं है, वह मनोरंजन का, उपभोग का, एक उपकरण मात्र है। जीवन में झूठी उत्तेजना लाने वाली एक खुराक है। प्रेमचन्द तक आते–आते यह दृष्टिकोण बदल कर विवके और नीति का दृष्टिकोण हो जाता है। उनके लिए उपन्यास सामाजिक जीवन का निर्माण करने वाला एक चेतन प्रभाव है। उपयोगिता और सुधार उसके दो ठोस उद्देश्य हैं। नीति और विवके दो साधन।

प्रेमचन्द जी के उपन्यासों में सभी गुण मौजूद थे। वे मनोरंजन के साधन भी हैं और सत्य के वाहक भी। इनके उपन्यासों की सबसे प्रमुख विशेषता है उसकी आदर्शवादिता। चरित्रों और उसकी प्रवृत्तियों का निर्देश करने में वे आदर्शोन्मुखी हैं। इस प्रकार 'सेवा सदन' से लेकर 'कर्मभूमि' तक प्रेमचन्द जी का सुधारवादी और आदर्शवादी रूप मिलता है। जिसमें वे आश्रमों और सदनों की कल्पना करते हुए दृष्टिगत होते हैं। उन्होंने अपने समय के सामाजिक–राजनीतिक गतिविधि का पूरा चित्र इन उपन्यासों में अंकित किया है। इनके उपन्यासों में आदर्श, कर्तव्य, प्रेम, करुणा,

समाज–सुधार, देश–भक्ति, सत्याग्रह, अहिंसा, स्त्री–व्यथा, मध्यमवर्गीय मनुष्य की त्रासदी, कृषक जीवन की समस्याएँ, मेहनतकश जनता का संघर्ष आदि अनेक जीवन संदर्भों का प्रभावोत्पादक चित्रण हुआ है। उनके उपन्यासों में आदर्शवाद और यथार्थवाद का अद्भुत मेल देखने को मिलता है। वैसे अपने जीवन के प्रारंभिक काल में प्रेमचन्द जी आदर्शवादी ही रहे हैं, पर बाद में चलकर जीवन नीरस होते देख यथार्थ का उन्हें पल्लू पकड़ना पड़ता है। ताकि दोनों सम्मिश्रण से उनका जीवन सरलता से पूर्ण हो। 'गोदान' में उनका आदर्शवाद पूरी तरह बिखर गया है और उसका स्थान ले लिया है क्रूर यथार्थ ने। इसे जीवन का महाकाव्य भी कह सकते हैं। 'गोदान' के विषय में नलिन जी के विचार हैं, ''गोदान हिन्दी की ही नहीं, स्वयं प्रेमचन्द की भी एक अकेली औपन्यासिक कृति है, जिसका विराट् विस्तार, निर्मम तटस्थता, यथार्थता और सरलता की पराकाष्ठता तक पहुँचकर अत्यंत विशिष्ट बन गई है। ऐसी शैली किसी एक भारतीय उपन्यास में नहीं मिलती।''

प्रेमचन्द के पहले के उपन्यासकारों या उनके समकालीन उपन्यासकारों की भाषा दुरूह और क्लिष्ट हुआ करती थी। सिर्फ देवकी नन्दन खत्री की भाषा आडम्बरहीन हुआ करती थी। प्रेमचन्द जी ने भाषा की सादगी और सरलता को शैली की विशिष्टता में रूपान्तरित किया। (3)

'कर्मभूमि' प्रेमचन्द जी का अंतिम अपूर्ण उपन्यास है। जिसमें क्रांतिकारी भावनाओं के दर्शन होते हैं। प्रेमचन्द जी ने समाज के भिन्न–भिन्न वर्गों की परस्पर स्थिति और उनके संस्कार चित्रित करने वाले उपन्यास 'रंगभूमि', 'कर्मभूमि', की रचना की।

गोदान

यह रचना एक अविवाहित मामा से सम्बंधित प्रहसन था। मामा का प्रेम एक छोटी जाति की स्त्री से हो गया था। वे प्रेमचन्द को उपन्यासों पर समय बर्बाद करने के लिए निरन्तर डांटते रहते थे। मामा की प्रेम–कथा को नाटक का रूप देकर प्रेमचन्द ने उनसे बदला लिया। यह प्रथम रचना उपलब्ध नहीं है, क्योंकि उनके मामा ने क्रुद्ध होकर पांडुलिपि को अग्नि को समर्पित कर दिया। गोरखपुर में प्रेमचन्द को एक नये मित्र महावीर प्रसाद पोद्दार मिले और इनसे परिचय के बाद प्रेमचन्द और भी तेजी से हिन्दी की ओर झुके। उन्होंने हिन्दी में शेख सादी पर एक छोटी–सी पुस्तक लिखी थी, टॉल्स्टॉय की कुछ कहानियों का हिन्दी में अनुवाद किया था और 'प्रेम–पचीसी' की कुछ कहानियों का रूपान्तर भी हिन्दी में कर रहे थे। ये कहानियों का रूपान्तर भी हिन्दी में कर रहे थे। ये कहानियाँ 'सप्त–सरोज' शीर्षक से हिन्दी संसार के सामने सर्वप्रथम सन् 1917 में आयी। ये सात कहानियाँ थी :–

1. बड़े घर की बेटी
2. सौत
3. सज्जनता का दण्ड
4. पंच परमेश्वर
5. नमक का दारोगा
6. उपदेश
7. परीक्षा

प्रेमचन्द की सर्वश्रेष्ठ कहानियों में इन कहानियों की गणना होती है।

डॉ. नगेन्द्र लिखते हैं, '' प्रेमचन्द जी की बहिर्मुखी सामाजिकता को उसी समय प्रसाद ने चैलेंज किया। प्रसाद ने निर्मम होकर सामाजिक संस्थाओं का गर्हित खोखलापन दिखाया।''

प्रेमचन्द युग में ही प्रसाद जी ने 'कंकाल', 'तितली', 'इरावती', जैसे उपन्यासकारों में इस समाज की घृणित कुत्सित और ईर्ष्यापूर्ण भावनाओं का पर्दाफाश किया गया है। उन्होंने 'कंकाल' में सामाजिक यथार्थ का चित्रण कर यह प्रमाणित किया कि वे अतीत में ही रमे रहने वाले रचनाकार नहीं थे, बल्कि उन्हें अपने समय के सामाजिक यथार्थ की भी गहरी जानकारी थी।

इसी समय निराला ने 'अप्सरा', 'प्रभावती', 'निरुपमा', चोटी की पकड़', 'बिल्लेसुर बकरिहा', 'कुल्लीभाट' जैसे उपन्यासों से सामाजिक चेतना को एक नया आयाम दिया। 'बिल्लेसुर बकरिहा' और 'कुल्लीभाट' में उन्होंने यथार्थवादी दृष्टिकोण के साथ ही संस्मरणात्मक उपन्यास की एक नई शैली का विकास किया। इनमें हास्य–व्यंग्य की सरसता और तीक्षणता है, जिसके कारण प्रगतिशील चेतना अधिक सघनता एवं प्रामाणिकता के साथ परिपुष्ट होती है।

मचन्द–गबन

'गबन' उपन्यास की कथावस्तु में एक सामाजिक समस्या नारियों की आभूषण प्रियता और मध्यमवर्गीय परिवार या समाज की शेखी या झूठी मान प्रतिष्ठा के प्रदर्शन के कुपरिणामों का उल्लेख है। इस उपन्यास की मुख्य कथा में कई उपकथाएँ आकर मिल गई हैं। मुख्य कथा है कि रमानाथ एक मध्यवर्गीय परिवार का लापरवाह और उत्तरदायित्वहीन व्यक्ति है जो अपनी पत्नी को खुश करने के लिए झूठी शान शौकत का बखान करके अपनी प्रतिष्ठा बनाए रखना चाहता हैं। इसके लिए वह सर्राफों से उधार और कर्ज लेकर अपनी डींगें मारने में नहीं चूकता है। वह बहुत ही भीरू और कायर भी है। उसकी पत्नी जालपा किसी भी बता से बढ़कर आभूषणों को ही महत्व देती है। लेकिन रमानाथ चून्गी की नौकरी से पैसे लीकर कर्ज देने के कारण उसको अदा नहीं कर सकता है। वह भागकर कलकत्ता चोर की तरह एक देवीदीन नामक खटीक के यहाँ गुजरकर लेना कबूल कर लेता है। पुलिस के पंजे में आकर के क्रांतिकारियों के विरूद्व झूठी सहायता करना मंजूर कर लेता है फिर भी अपनी वास्तविकता को दिलों के साथ न तो अपनी पत्नी जालपा को और न घरवालों को ही सूचित करता है। कभी तो बयान बदलना चाहता है कभी पुलिस के डर से बयान दे देता है। उसकी कायरता का नकाब तब उतरता है तब जालपा और देवीदीन उसे घृणा की ठोकरें मारते हैं। उससे वह अन्त में अपने बयान को बदलकर क्रांतिकारियों को सजा से बरी कराकर के स्वयंबरी हो जाता है।

प्रेमचन्द ने इस उपन्यास में नारी की आभूषण प्रियता से उत्पन्न दुष्परिणामों झूठी मानमर्यादा के प्रदर्शन के परिणामों अनमेल विवाह के परिणामों आदि का चित्रण करके इससे दूर रहने का सुझाव और बोध दिया है। तत्कालीन समस्याओं का चित्रण करके इससे सावधान या दूर रहने का उपन्यासकार ने सुझाव अप्रत्यक्ष रूप से दिया है यही इस रचना का उद्देश्य है।(3)

कहानी

उनकी अधिकतर कहानियों में निम्न व मध्यम वर्ग का चित्रण है। डॉ. कमलकिशोर गोयनका ने प्रेमचन्द की संपूर्ण हिन्दी–उर्दू कहानी को प्रेमचन्द कहानी रचनावली नाम से प्रकाशित कराया है। उनके अनुसार प्रेमचन्द ने कुल 301 कहानियाँ लिखी हैं जिनमें 3 अभी अप्राप्य हैं। प्रेमचन्द का पहला कहानी संग्रह सोजे वतन नाम से जून 1907 में प्रकाशित हुआ। इसी संग्रह की पहली कहानी दुनिया का सबसे अनमोल रतन हो आम तौर पर उनकी पहली प्रकाशित कहानी माना जाता रहा है। डॉ. गोयनका के अनुसार कानपुर से निकलने वाली उर्दू मासिक पत्रिका जमाना के अप्रैल अंक में प्रकाशित सांसारिक प्रेम और देश–प्रेम (इश्के दुनिया और हुब्बे वतन) वास्तव में उनकी पहली प्रकाशित कहानी है।

उनके जीवन काल में कुल नौ कहानी संग्रह प्रकाशित हुए–सोजे वतन, 'सप्त सरोज', 'नवनिधि', 'प्रेमपूर्णिमा', 'प्रेम–पचीसी', 'प्रेम–प्रतिमा', 'प्रेम–द्वादशी', 'समरयात्रा', 'मानसरोवर' : भाग एक व दो और 'कफन'। उनकी मृत्यु के बाद उनकी कहानियों 'मानसरोवर' शीर्षक से 8 भागों में प्रकाशित हुई। प्रेमचन्द साहित्य

के मुदराधिकार से मुक्त होते ही विभिन्न संपादकों और प्रकाशकों ने प्रेमचन्द की कहानियों के संकलन तैयार कर प्रकाशित कराए। उनकी कहानियों में विषय और शिल्प की विविधता है। उन्होंने मनुष्य के सभी वर्गों से लेकर पशु–पक्षियों तक को अपनी कहानियों में मुख्य पात्र बनाया है। उनकी कहानियों में किसानों, मजदूरों, स्त्रियों, दलितों, आदि की समस्याएँ गंभीरता से चित्रित हुई हैं। उन्होंने समाजसुधार, देशप्रेम, स्वाधीनता संग्राम आदि से संबंधित कहानियाँ लिखी हैं। (4) उनकी ऐतिहासिक कहानियाँ तथा प्रेम संबंधी कहानियाँ भी काफी लोकप्रिय साबित हुई। प्रेमचन्द की प्रमुख कहानियों में ये नाम लिये जा सकते हैं –
'पंच परमेश्वर', 'गुल्ली डंडा', 'दो बैलों की कथा', 'ईदगाह', बड़े भाई साहब', 'पूस की रात', 'कफन', 'ठाकुर का कुआँ', 'सद्गति', 'बूढ़ी काकी', 'तावान', 'विध्वंस', 'दूध का दाम', 'मंत्र' आदि (4)

नाटक

प्रेमचन्द ने संग्राम (1923), कर्बला (1924) और प्रेम की वेदी (1933) नाटकों की रचना की। ये नाटक शिल्प और संवेदना के स्तर पर अच्दे हैं लेकिन उनकी कहानियों और उपन्यासों ने इतनी ऊँचाई प्राप्त कर ली थी कि नाटक के क्षेत्र में प्रेमचन्द को कोई खास सफलता नहीं मिली। ये नाटक वस्तुतः संवादात्मक उपन्यास ही बन गए हैं।

लेख/निबंध

प्रेमचन्द एक संवेदनशील कथाकार ही नहीं, सजग नागरिक व संपादक भी थे। उन्होंने 'हंस'ख 'माधुरी', 'जागरण', आदि पत्र–पत्रिकाओं का संपादन करते हुए व तत्कालीन अन्य सहगामी साहित्यिक पत्रिकाओं 'चाँद', 'मर्यादा', 'स्वदेश' आदि में अपनी साहित्यिक व सामाजिक चिंताओं को लेखों या निबंधों के माध्यम से अभिव्यक्त किया। अमृतराय द्वारा संपादित 'प्रेमचन्द : विविध प्रसंग' (तीन भाग) वास्तव में प्रेमचन्द के लेखों का ही संकलन है। प्रेमचन्द के लेख प्रकाशन संस्थान से 'कुछ विचार' शीर्षक से भी छपे हैं। प्रेमचन्द के मशहूर लेखों में निम्न लेख शुमार होते हैं– साहित्य का उद्देश्य, पुराना जमाना नया जमाना, स्वराज के फायदे, कहानी कला (1,2,3), कौमी भाषा के विषय में कुछ विचार, हिन्दी उर्दू की एकता, महाजनी सभ्यता, उपन्यास, जीवन में साहित्य का स्थान आदि।

साहित्य की विशेषताएँ

प्रेमचन्द की रचना–दृष्टि, विभिन्न साहित्य रूपो में, अभिव्यक्त हुई। वह बहुमुख प्रतिभा संपन्न साहित्यकार थे। प्रेमचन्द की रचनाओं में तत्कालीन इतिहास बोलता है। उन्होंने अपनी रचनाओं में जन साधारण की भावनाओं, परिस्थितियों और उनकी समस्याओं का मार्मिक चित्रण किया। उनकी कृतियाँ भारत के सर्वाधिक विशाल और विस्तृत वर्ग की कृतियाँ हैं। अपनी कहानियों से प्रेमचन्द मानव–स्वभाव की आधारभूत महत्ता पर बल देते हैं। 'बड़े घर की बेटी', 'आनन्दी', अपने देवर से अप्रसन्न हुई, क्योंकि वह गंवार उससे कर्कशता से बोलता है और उस पर खींचकर खड़ाऊँ फेंकता है। जब उसे अनुभव होता है कि उनका परिवार टूट रहा है और उसका देवर परिताप से भरा है, तब वह उसे क्षमा कर देती है और अपने पति को शांत करती है। इसी प्रकार 'नमक का दारोगा' बहुत ईमानदार व्यक्ति है। घूस देकर उसे बिगाड़ने में सभी असमर्थ हैं। सरकार उसे, सख्ती से उचित कार्यवाही करने के कारण, नौकरी से बर्खास्त कर देती है, किन्तु जिस सेठ की घूस उसने अस्वीकार की थी, वह उसे अपने यहाँ ऊँचे पद पर नियुक्त करता है। वह अपने यहाँ ईमानदार और कर्तव्यपरायण कर्मचारी रखना चाहता है। इस प्रकार प्रेमचन्द के संसार में सत्कर्म का फल सुखद होता है। वास्तविक जीवन में ऐसी आश्चर्यप्रद घटनाएँ कम घटती है। गाँव का पंच भी व्यक्तिगत विद्वेष और शिकायतों को भूलकर सच्चा न्याय करता है। उसकी आत्मा उसे इसी दिशा में ठेलती है। असंख्य भेदों, पूर्वाग्रहों, अन्धविश्वासों, जात–पांत के झगड़ों और हठधर्मियों से जर्जर ग्राम–समाज में भी ऐसा न्याय–धर्म कल्पनातीत लगता है(5)। हिन्दी में प्रेमचन्द की कहानियों का एक संग्रह बम्बई के एक प्रसिद्ध प्रकाशन गृह, हिन्दी ग्रन्थ–रत्नाकर ने प्रकाशित किया। यह संग्रह 'नवनिधि' शीर्षक से निकला और इसमें 'राजा हरदौल' और 'रानी सारन्धा' जैसी बुन्देल वीरता की सुप्रसिद्ध कहानियाँ शामिल थीं।(4)

रचनाओं की रूपरेखा

इसके कुछ समय के बाद प्रेमचन्द ने हिन्दी में कहानियों का एक और संग्रह का शीर्षक था 'प्रेम–पूर्णिमा'। 'बड़े घर की बेटी' और 'पंच परमेश्वर' की ही परम्परा की एक और अद्भुत कहानी 'ईश्वरीय न्याय' इस संग्रह में थी। शायद कम लोग जानते है कि प्रख्यात कथाकार मुंशी प्रेमचन्द अपनी महान् रचनाओं की रूपरेखा पहले अंग्रेजी में लिखते थे और इसके बाद उसे हिन्दी अथवा उर्दू में अनूदित कर विस्तारित करते थे। भोपाल स्थित बहुकला केन्द्र भारत भवनकी रजत जयंती के उपलक्ष्य पर प्रेमचन्द के व्यक्तित्व एवं कृतित्व पर यहाँ आयोजित सात दिवसीय प्रदर्शनी में इस तथ्य का खुलासा करते हुए कई हिन्दी एवं उर्दू रचनाओं की अंग्रेजी में लिखी रूपरेखाएँ प्रदर्शित की गई हैं। प्रदर्शनी के संयोजक और हिन्दी के समालोचक डॉ. कमल किशोर गोयनका ने इस अवसर पर कहा कि प्रेमचन्द हिन्दी और उर्दू के साथा–साथ अंग्रेजी भाषा के अच्छे जानकार थे। डॉ. गोयनका ने बताया कि प्रेमचन्द अपनी कृतियों। की रूपरेखा पहले अंग्रेजी में ही लिखते थे। उसके बाद उसका अनुवाद करते हुए हिन्दी या उर्दू में रचना पूरी कर देते थे। डॉ. गोयनका ने कहा कि प्रेमचन्द ने अपनी महान् कृति 'गोदान' की भी रूपरेखा पहले अंग्रेजी में लिखी थी जिसकी मूल प्रति यहाँ प्रदर्शनी में लगाई गई है। उनके एक अलिखित उपन्यास की रूपरेखा भी अंग्रेजी में लिखी हुई उन्हें मिली है। प्रेमचन्द ने रंग भूमि और कायाकल्प उपन्यासों की रूपरेखा भी अंग्रेजी में लिखी थी। उनकी डायरी भी अंग्रेजी में लिखी हुई मिली है। वहीं, प्रदर्शनी में पंडित जवाहर लाल नेहरू के अपनी पुत्री को अंग्रेजी में लिखे गए पत्रों का अनुवाद हिन्दी में करने के आचार्य नरेन्द्र देव का प्रेमचन्द को लिखा गया आग्रह पत्र भी रखा गया है। प्रेमचन्द ने पं. नेहरू के इन पत्रों को हिन्दी में रूपान्तरित किया था।(6) दिल्ली विश्वविद्यालय में प्रोफेसर रहे डॉ. गोयनका ने कहा कि वर्ष 1972 में प्रेमचन्द पर पी.एच.डी. करने के बाद उन्होंने प्रेमचन्द द्वारा रचित 1500 से अधिक पृष्ठों का अप्राप्य साहित्य खोजा। इसमें 30 नई कहानियाँ मिली। प्रोफेसर महावीर सरन जैन ने प्रेमचन्द के कथा–साहित्य के भाषिक स्वरूप का विश्लेषण किया।(6)

कृतियाँ

प्रेमचन्द की कृतियाँ भारत के सर्वाधिक विशाल और विस्तृत वर्ग की कृतियां हैं। उन्होंने उपन्यास, कहानी, नाटक, समीक्षा, लेख, सम्पादकीय, संस्मरण आदि अनेक विधाओं में साहित्य की सृष्टि की, किन्तु प्रमुख रूप से वह कथाकार हैं। उन्हें अपने जीवनकाल में ही उपन्यास सम्राट की पदवी मिल गई थी। उन्होंने कुल 15 उपन्यास, 300 से कुछ अधिक कहानियां, 3 नाटक, 10 अनुवाद, 7 बाल–पुस्तकें तथा हजारों पृष्ठों के लेख, सम्पादकीय, भाषण, भूमिका, पत्र आदि की रचना की। जिस युग में प्रेमचन्द ने कलम उठाई थी, उस समय उनके पीछे ऐसी कोई ठोस विरासत नहीं थी और न ही विचार और न ही प्रगतिशीलता का कोई मॉडल ही उनके सामने था सिवाय बांग्ला साहित्य के। उस समय बंकिम बाबू थे, शरतचन्द्र थे और इसके अलावा टॉलस्टॉय जैसे रूसी साहित्यकार थे। लेकिन होते–होते उन्होंने गोदान जैसे कालजयी उपन्यास की रचना की जो कि एक आधुनिक क्लासिक माना जाता है।(7)

पुरस्कार

मुंशी प्रेमचन्द की स्मृति में भारतीय डाक विभाग की ओर से 31 जुलाई 1980 को उनकी जन्मशती के अवसर पर 30 पैसे मूल्य का डाक टिकट जारी किया। गोरखपुर के जिस स्कूल में वे शिक्षक थे, वहाँ प्रेमचन्द साहित्य संस्थान की स्थापना की गई है। इसके बरामदे में एक भित्तिलेख है। यहाँ उनसे संबंधित वस्तुओं का एक संग्रहालय भी है। जहाँ उनकी एक आवक्षप्रतिमा भी है। प्रेमचन्द की पत्नी शिवरानी देवी ने प्रेमचन्द घर में नाम से उनकी जीवनी लिखी और उनके व्यक्तित्व के उस हिस्से को उजागर किया है, जिससे लोग अनभिज्ञ थे। उनके ही बेटे अमृत राय ने 'कलम का सिपाही' नाम से पिता की जीवनी लिखी है। उनकी सभी पुस्तकों के अंग्रेजी व उर्दू रूपांतर तो हुए ही है, चीनी, रूसी आदि अनेक विदेशी भाषाओं में उनकी कहानियाँ लोकप्रिय हुई हैं।(7)

स्वर्ण युग

प्रेमचन्द की उपन्यास–कला का यह स्वर्ण युग था। सन् 1931 के आरम्भ में गबन प्रकाशित हुआ था। 16 अप्रेल 1931 को प्रेमचन्द ने अपनी एक और महान् रचना कर्मभूमि शुरू की।

यह अगस्त, 1932 में प्रकाशित हुई। प्रेमचन्द के पत्रों के अनुसार सन् 1932 में ह ावह अपना अन्तिम महान् उपन्यास, गोदान लिखने में लग गये थे, यद्यपि 'हंस' और 'जागरण' से सम्बंधित अनेक कठिनाईयों के कारण इसका प्रकाशन जून, 1936 में ही सम्भव हो सका। अपनी अन्तिम बीमारी के दिनों में उन्होंने एक और उपन्यास, 'मंगलसूत्र', लिखना शुरू किया था, किन्तु अकाल मृत्यु के कारण यह अपूर्ण रह गया। 'गबन', 'कर्मभूमि' और 'गोदान'–उपन्यासत्रयी पर विश्व के किसी भी कृतिकार को गर्व हो सकता है। 'कर्मभूमि' अपनी क्रांतिकारी चेतना के कारण विशेष महत्वपूर्ण है। लाहौर कांग्रेस के अधिवेशन में अध्यक्ष–पद से भाषण देते हुए जवाहरलाल नेहरू ने घोषित किया था। 'मैं गणतंत्रवादी और समाजवादी हूँ।'' कर्मभूमि इस अशान्त काल की प्रतिध्वनियों से भरा हुआ उपन्यास है। गोर्की के उपन्यास, 'माँ' के समान ही यह उपन्यास भी क्रान्ति की कला पर लगभग एक प्रबन्ध–ग्रन्थ है। यह यह उपन्यास अद्भुत पात्रों की एक सम्पूर्ण शृंखला प्रस्तुत करता है। अमर कांत, समरकान्त, सकीना, सुखदा, पठानिन, मुन्नी। अमरकान्त और समरकान्त पाठकों को पिता और पुत्र, नेहरू द्वय का स्मरण दिलाते हैं। मुन्नी, पठानिन, सकीना और लाला समरकान्त सभी की परिणति घटनाओं द्वारा होती है।

रूढ़िवाद का विरोध

जिस समय मुंशी प्रेमचन्द का जन्म हुआ वह युग सामाजिक–धार्मिक रूढ़िवाद से भरा हुआ था। इस रूढ़िवाद से स्वयसं प्रेमचन्द भी प्रभावित हुए। तब प्रेमचन्द ने कथा–साहित्य का सफर शुरू किया, और अनेकों प्रकार के रूढ़िवाद से ग्रस्त समाज को यथा शक्ति कला के शस्त्र से मुक्त कराने का संकल्प लिया। अपनी कहानी के बालक के माध्यम से यह घोषणा करते हुए कहा कि ''मैं निरर्थक रूढ़ियों और व्यर्थ के बन्धनों का दास नहीं हूँ।''

समाज में व्याप्त रूढ़ियाँ

सामाजिक रूढ़ियों के संदर्भ में प्रेमचन्द ने वैवाहिक रूढ़ियों जेसे बेमेल विवाह, बहुविवाह, अभिभावकों द्वारा आयोजित विवाह, पुनर्विवाह, दहेज प्रथा, विधवा विवाह, पर्दाप्रथा, बाल विवाह, वृद्धविवाह, पतिव्रत धर्म तथा वारंगना वृद्धि के संबंध में बड़ी संवेदना और सचेतना के साथ लिखा है। तत्कालीन समाज में यह बात घर कर गई थी कि तीन पुत्रों के बाद जन्म लेने वाली पुत्री अपशकुन होती है। उन्होंने इस रूढ़ि का अपनी कहानी तेंतर के माध्यम से कड़ा विरोध किया है। होली के अवसर पर पाये जाने वाली रूढ़ि की निन्दा करते हुए वह कहते है कि अगर पीने–पिलाने के बावजूद होली एक पवित्र त्योहार है तो चोरी और रिश्वतखोरी को भी पवित्र मानना चाहिए। उनके अनुसार त्योहारों का मतलब है अपने भाईयों से प्रेम और सहानुभूति करना ही है। आर्थिक जटिलताओं के बावजूद आतिथ्य–सत्कार को मर्यादा एवं प्रतिष्ठा का प्रश्न मान लेने जैसे रूढ़ि की भी उन्होंने निन्दा की है।

धार्मिर्क रूढ़ियाँ

प्रेमचन्द महान् साहित्यकार के साथ–साथ एक महान् दार्शनिक भी थे। मुंशी जी की दार्शनिक निगाहों ने धर्म की आड़ में लोगों का शोषण करने वालों को अच्छी तरह भाँप लिया था। वह उनके बाह्य विधि–विधानों एवं आंतरिक अशुद्धियों को पहचान चुके थे। इन सब को परख कर प्रेमचन्द ने प्रण ले लिया था कि वह धार्मिक रूढ़िवादिता को खत्म करने का प्रयास करेंगे।(8)

साहित्य में प्रेमचन्द का योगदान अतुलनीय

महोबा। साहित्य के क्षेत्र में प्रेमचन्द का योगदान अतुलनीय है। उन्होंने कहानी और उपन्यास के माध्यम से लोगों को साहित्य से जोड़ने का काम किया, उनके द्वारा लिखे गए उपन्यास और कहानियां आज भी प्रासंगिक हैं।

यह उद्गार पूर्व प्रधानाचार्य शिव कुमार गोस्वामी ने बुधवार को सरस्वती विद्या मंदिर इंटर कॉलेज में मुंशी प्रेमचन्द जयंती पर आयोजित गोष्ठी में व्यक्त किए। मुंशी प्रेमचन्द के जीवन पर विस्तार से प्रकाश डालते हुए कि मुंशी प्रेमचन्द ने एसडीआई के पद पर रहते हुए जिले में पांच साल बिताए। उन्होंने गांवों में जाकर जो कुछ भी देखा, उसको अपनी कहानियों के माध्यम से सबके सामने रखा, जो कि आज भी प्रासंगिक प्रतीत होता है।

प्रधानाचार्य विपिन बिहारी द्विवेदी ने कहा कि मुंशी प्रेमचन्द की कहानियां हृदय को छू लेने वाली है। महोबा मुंशी प्रेमचन्द की कर्मभूमि रही है। कहा कि साहित्य के क्षेत्र में मुंशी जी ने जिले की नई पहचान दिलाई। संगीतचार्य पं. जगप्रसाद तिवारी ने कहा कि आत्माराम की कहानी पनवाडी ब्लाक के बैंदों गांव की कहानी है, जबकि मंत्र कहानी चरखारी ब्लाक के अकठोहां गांव पर आधारित है। कहा कि मुंशी प्रेमचन्द गांव में प्राइमरी स्कूल का निरीक्षण करने जाते थे और गांवों की ज्वलंत समस्याओं को देखकर अपने शब्द में कहानी के रूप में लिखते थे। इस मौके पर केएल सैनी, जयनारायण तिवारी, प्रियव्रत अग्रवाल, आदित्य मिश्र, गिरीश सक्सेना, ब्रजलाल श्रीवास, रवींद्र चौरसिया, अनिल कुमार, स्वतंत्र मिश्र, देवीचरण शुक्ल, राम प्रसन्न त्रिपाठी आदि मौजूद रहे।(9)

उपसंहार

प्रेमचन्द ने अपने जीवन के कई अद्भूत कृतियां लिखी हैं। तब से लेकर आज तक हिन्दी साहित्य में ना ही उनके जैसा कोई हुआ है और ना ही कोई और होगा। अपने जीवन के अंतिम दिनों के एक वर्ष को छोड़कर उनका पूरा समय वाराणसी और लखनऊ में गुजरा, जहाँ उन्होंने अनेक पत्र–पत्रिकाओं का संपादन किया और अपना साहित्य–सृजन करते रहे। 8 अक्टूबर, 1936 को जलोदर रोग से उनका देहावसान हुआ।

संदर्भ–सूची

1. प्रेमचन्द : जीवन परिचय (हिन्दी) (एच.टी.एम.एल)। अभिगमन तिथिः 9 नवंबर, 2010
2. अध्याय 16, पृ. 574, हिन्दी साहित्य का इतिहास, डॉ. नगेन्द्र, 33वां संस्करण–2007, मयूर पेपरबैक्स, नौएडा
3. प्रो. डी.पी. चन्द्रवंशी, ''हिन्दी उपन्यास के क्षेत्र में प्रेमचन्द का योगदान'' Research Journal of Humanities and Social Sciences 2015

4. प्रेमचन्द (2003), प्रेमचन्द की 75 लोकप्रिय कहानियाँ, दिल्ली, भारतः राजा प्रकाशन, आई.ऍस.बी.ऍन.
5. हिन्दी साहित्य का इतिहास : प्रेमचन्द शुक्ल
6. प्रेमचन्द 1936. साहित्य के उद्देश्य.
7. कृतियों की रूपरेखा अंग्रेजी में लिखते थे प्रेमचन्द (हिन्दी) (एच.टी.एम.एल.)। अभिगमन तिथिः 9 अक्टूबर, 2010
8. https://hindi.webdunia.com/hindi-essay/essay-con-premchand-in-hindi-117073100050_1.html
9. मनोज कुमार पर 8:50 पीएम लेबलः उपन्यास साहित्य, प्रेमचन्द, मनोज कुमार, साहित्यकार